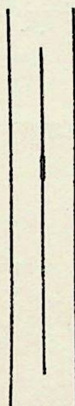
सागर के तीर

(कविता संग्रह)

Sagar Ke Teer

सागर के तीर

(कविता संग्रह)



— ओमप्रकाश गुप्त

प्रकाशक :-

हिन्दी साहित्य मण्डल,

जम्मू तवी।



आषाढ़ १८८९ (शक संवत)
जुलाई १९६७ (ई०)
1967

मुद्रक- : रायज़ादा प्रेस, रानीतालाब, जम्मू ।

मूल्य २.५०

इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ आर्थिक
सहायता के लिए, लेखक
जम्मू-काश्मीर कला, संस्कृति तथा
भाषा एकेडेमी का आभारी है ।



था सत्य का सागर हिलोरें ले रहा,
कौन जाने कौन पाए थाह को !

अनजान शिशु-सा
तीर पर था खेलता,

झूम उठता देखकर कंकर कहीं—
सुन्दर सुहाना शंख, कोई सीप या ;
था यही परिमाण मेरे ज्ञान का ;

और मेरे सामने था झूमता ,
सत्य का सागर हिलोरें मारता ,
कौन जाने, कौन पाए थाह को !

(आइज़क न्यूटन के शब्दों
का भावानुवाद)



हो कौन ?

रंगिनि !
हो कौन ?
हो कौन चिलमन में छिपी-सी
नित हिलाती हो हृदय के तार !
छेड़ो नित अनोखे राग !
तुम ही हो—

कण कण में जिसके
है वही आलोक ;
वर्ण में मेरे रंगी तुम
नृत्य करती, थिरकती
मेरे नयन की झपकनों के संग !

भूल गई हो तुम प्रिये
शायद वह क्षण मादक, मधुर
जब मिले थे हम

हुआ था समस्त नवनिर्माण
भूलती हो तुम मुझे,
किंवा कि भूला मैं तुझे हूं
या स्वयं को खो गया हूँ।

कुछ भी हो
अब संगिनि !
तुम खोल लेने दो मुझे
निज कंचुकी की गाँठ !

अब तो हटा दो समस्त लज्जा
खोल दो सब भेद अपने
सोचकर चिर-सहचरी
कि मैं तुम्हारा ही सखा हूं !



गीत वह फिर सेसुनाओ।

रश्मियाँ पहली उषा की सुन जिसे जागी सुनहली
नभ से कोई ढल पड़ा था ओढ़ कर चुनरी रुपहली
प्रथम स्पन्दन में पवन ने गाए थे जो स्वर अनोखे
मुझ को भूले, याद वे होंगे तुम्हें, लेकिन, सहेली
इक बार फिर धीरे से आली, स्वर वही तो गुनगुनाओ

सुन पड़ा इक स्वर कहीं से, खिल पड़े सर में कमल थे
मुस्कराते पूर्व में अरुणिम अधर कितने विमल थे
बरसता आलोक कैसा छिटक कर तव भाल से था
उमड़ते श्यामल वे कुन्तल, मेघ या चंचल, चपल थे
आज फिर गुमसुम दिशाओ प्राण दायक गीत गाओ

शीश-से उड़ उड़ रहे आंचल की वह कैसी फबन थी
इन्द्रधनु-से वेष में तुम दीखती कैसी मगन थी
चरण राजि बिखर कर अरुणिम छटा दिखला रही थी
परस पा तव गात्र का मधुमद भरी कैसी पवन थी
शीश पर आंचल तो लेलो चात्रिकों को न भुलाओ

अमित उन्मादक वह क्षण था तुझ को मैंने जब निहारा
लाज से थीं छिप गईं तममय हुआ संसार सारा
मेरे जीवन में उषा आती प्रतिदिन है प्रिये ! पर,
साँझ भई, तम में छिपीं जा, जब कभी मैंने पुकारा
तारों जड़ा आंचल उठा इक बार इन बाहों में आओ

शान्त सुन जिस कोहुआ था सिन्धु का भीषण प्रलयरव
जीवन नया, यौवन नया था; नवल पांखें, नवल कलरव
सिमटता नहीं है हृदय में, दिव्य-सा उल्लास था वह
गूंजता संगीत कैसा, थिरकते थे नवल पल्लव
उस ही लय में थिरक कर फिर पायलों को झुनझुनाओ

फैलता ब्रह्माण्ड में कैसा सलोना गान था वह !
नयन मूंदे सुन रहे किसी का मधुर आह्वान था वह
बावकी धरती का मानो प्रथम ही ऋतुस्नान था वह
ओह! दिशाओं में लहरता नील-सा परिधान था वह
मत संभालो आज इसको, आज मत पर्दा बनाओ !

दीपशिखा

देखता हूं
(टिकटिकी बांधे)
जल रही आलोक देती
यह दिए की जोत !
मौन,
योग-विलीन !
विघ्न का साहस करे,
मारुत भला क्यों ?

× × ×

दिए की जोत,
नर्तकी
विछुब्धा नहीं,
पायल नहीं
घूंघरु नहीं !
मात्र इक उन्माद,
अन्य के मन में उगाता

स्पन्द,
तार की झंकार !
या फिर वैराग्य

कैसा भाग्य !
शिखे !
तुम मौन क्यों हो ?
साथी नहीं क्या साथ ?
विक्षुब्ध मत हो !
जगत भर के प्राण में
तेरे प्रणय का दान
भरता प्राण
जलती लग्न !
प्रेम-निमग्न !
नयन में प्यास,
टिकटिकी बांधे,
उदास, उदास !

———

हम मुसाफ़िर

हम मुसाफ़िर,
ज़िन्दगी के सफ़र पर
रुकना कहां ?
राह ही अवाज देती
राह ही आगे चलाती ।
सोचना, टिकना कहां ?

× × ×

इसलिय हे प्राण !
जो तू ने बुलाया प्यार से,
है शुक्रिया !
पर अलविदा.........
तुम खुश रहो.........
हम मुसाफ़िर
ज़िन्दगी के सफर पर
रुकना कहां ?

ममता

लहरों में स्तन उभरा करता
छिप जाते जिससे दिग-दिगन्त ,
जिससे छवि पा जाता अनन्त !
जो प्राण पिलाता नयनों को ,
ममता-युत वक्ष तिरा करता !
लहरों में स्तन उभरा करता ॥

बाहों में भर पीता रहता ।
वत्सल-रस से भीगा रहता ।
जो छू जाता अनजाने में
बन फ़ेन वही बिखरा करता ।
लहरों में स्तन उभरा करता ।

जिस पर मेरी अंगुलियों के—
अंकित हैं चिह्न आलोकमय !
वह ममता मेरी अपनी है,
है कौन मुझे जो रोक सके ?
इन तूफ़ानों कों देख देख—
साहस मेरा निखरा करता ।
लहरों में स्तन उभरा करता ।

बादल हैं ये !

यह है सैन्य किसका बढ़ा जा रहा ?
किस शत्रु दल पै चढ़ा जा रहा ?
यह किसका पीताम्बर उड़ा जा रहा
यह किसका विजय-चिह्न लहरा रहा ?
है किस शंख की यह गरज बोल तो !
हे संजय ! ज़रा भेद को खोल तो।
है किसकी यह शक्ति, संभालेगा कौन !
ला रहा वह गिरिखण्ड देखो तो कौन ?
गिर रहा इक पटल दूसरा उठ रहा।
किसका निर्माण है, किसका घर लुट रहा ?
किसके आगम की आशा में है छिड़कना !
या त्रिनयन के डमरु की झिड़कना !
यह कैसा भय से भरा शोर है ?
'न जाऊंगा' कहता यह तम घोर है।
किसी द्रौपदी के क्या कुन्तल हैं ये ?
सावन के साथी रे बादल हैं ये !

ऊषा !

ऊषा ने पायल छनकाई !
तारों के मुखड़ों की किरणें
घूंघट में लगीं छिपने आली ।
किन्हीं अनजान कपोलों पर
है छिटक गई लज्जा लाली !
धीरे से कलियाँ चटक उठीं
लहराने लगी डाली-डाली !
सोई सी कूक उठी उड़ कर
कू कू करती कोयल काली
लहरों में किरणों ने बुन दी
सतरंगी-सी सुन्दर जाली
मर्मर ध्वनि से वायु बोली—
ऊषा आई, ऊषा आई ।
ऊषा ने पायल छनकाई ।

मृग शावक ऐसे उछल पड़े ।
मां संग कुलेलें करते-से
धरती की सारी सुन्दरता
नन्हे नयनों में भरते-से
हिम-से सुन्दर शश नाच उठे
विधि का अभिनन्दन करते-से,
सपनों के साजन ज्यों आएं
उल्फुल्लित-से पग धरते-से ।
ज्यों इन्द्रधनुष के रंग सभी
नीले नभ से हों झरते-से
अरु पद्म कपोलों पर नाचो
साड़ी-सी पहने अरुणाई,
ऊषा आई, ऊषा आई ।

कन्धे पर हल्ल लिए गाते
धरती के जाए यूं निकले
कवि की वाणी से मदिर-सरल
वीणा पे तंरगित छन्द चले।
इन पोली पीली किरणों में
कल कल करती लहरें मचलें
ज्यों हेम शिखा से हिम नग पर
घुल तरल-तरल बूंदें पिघलें।
यौवन की मदिरा में जैसे
शैशव की यादें सरस मिलें,
रजनी को जैसे तनिक तनिक
मसकी अंगिया की सुध आई!
ऊषा ने पायल छनकाई!



दुख भरे मन से !

दुख भरे मन से साथी !
मैं सुख के गीत गाऊंगा ।

फिर न कहना : इन गीतों में
प्राण नहीं, है प्यार नहीं ।
फिर न कहना : इन प्राणों में
वीणा की झंकार नहीं ।
इस वीणा के, फिर न कहना:
कसे हुए हैं तार नहीं,
इन तारों में यौवन का—
संचार नहीं, संभार नहीं ।

जल-युत नयन कटोरों बिन,
मैं साज ही क्या लहराऊँगा ?

नभ में घन गहराते हैं ,
धरती पर हाहाकार सखे !
मुझ को बढ़ जाने दो पथ पर ,
छोड़ भी दो अब द्वार सखे,
जय मेरी मुस्कानों में
भावी की निश्चित हार सखे ;
मेरी ही मुस्कानों से फिर,
क्यों करते हो प्यार सखे ?

नयनों का जल नयनों में हो
सोखूंगा , मुस्काउंगा !

मेघदूत !

उत्तर दिशा को दौड़ते बादल,
हो क्यों विक्षुब्ध साथी?
गगन चुंभी हिमगिरि की चोटियां—
शायद न तुम को रोक पाएं—
अपनी पराजय पर ही शायद, आज न वे रो सकेंगी !

लाल है लोहू से साथी, तेरा चिर-परिचित हिमानी
खा पछाड़ें नित्य ही कहते रहे जिसकी कहानी !
अगणित युगों से था खड़ा, प्रहरी-सा प्रत्यञ्चा चढ़ाए !
देखना उसकी दशा न, नयन में आए न पानी !
श्वेत हिम पर लग गए हैं, रक्त के रे ! दाग़ जितने,
तेरी बौछाड़ें न शायद, आज उनको धो-सकेंगी !

आदि-कवि ने एक दिन तुझ को किया था दूत अपना
याद है, या बन गया है, आज वह भूला-सा सपना !
अलकापुरी का अमित वैभव आज यदि न देख पाओ ,
दो क्षण वहां आंसू बहाने को न मेरे मित्र रुकना !
लौटकर कवि से यह कह दो : गीत के स्वर तार बदलो !
चिर पूज्य-पावन चोटियाँ न फिर से अपनी हो सकेंगी !

आज नव सन्देश घुमड़ा दो गगन में झूमकर ,
महलों, गुफ़ाओं, चोटियों, समतल मही पर घूम कर
आज कह दो पवन से, तूफ़ान प्रलयंकर उठाओ
तूफ़ान-से हम बढ़ चलें माँ की चरण-रज चूम कर।
यदि हमने न बदला लिया लज्जा भरी उस हार का,
वीर माँ की वीर आँखें फिर कभी क्या सो सकेंगी ?

(चीनी आक्रमण के समय लिखी गई)

———

आज कोई गीत गाओ !

आज मन रह रह के अपने से कहीं उड़ दूर जाता ,
क्षितिज पर छाने को जाने व्यर्थ क्यों पाँखें फैलाता !
असमर्थ पा अपने को रोता, हार कर शठ मुस्कराता
सिन्धु नौका के खगों सा लौटता, फिर भाग जाता !
आज मेरे प्राण को हे प्राण, प्राणों को लौटाओ !

आज कोई गीत गाओ !

बीत जाएगी यदि वेला मधुर, मादक, सुहानी ,
फिर अधूरी ही रहेगी युग से चलती यह कहानी।
असीम की सीमा क्या समझोगे कहो रे विश्व ज्ञानी,
आज छोड़ो ज्ञान को , साथी हृदय का मूल्य पाओ,

आज कोई गीत गाओ !

———

इन गीतों की अपनी डगर है

मेरे गीत खामोश खड़े हैं हू हू करते श्मशानों में ,
अचल पर्वतों को कंपाते उठ उठ नव नव तूफ़ानों में ।

इन गीतों ने सागर की लहरों में भीषण ज्वार उठाया,
इन लहरों ने दुखी मनुज के अन्तस में है प्यार जगाया ।

इन गीतों की पवन अनोखी मरुओं में भी फूल खिलाए
मेरे कर से ताड़ित वीणा दुखी धरा पर स्वर्ग सजाए ।

इन गीतों में शक्ति अमित है मिथ्या की सब जड़ें हिलाएं
मानव के शोषक तत्वों को तोड़ फोड़ धूसरित कराएं ।

घुटे कण्ठ की रुद्ध ध्वनि में रुका पड़ा गीतों का स्वर है
चलते पथ पर नहीं मिलेंगे, इन गीतों की अपनी डगर है ।

रोती बिलखती जग की भंगिमा परिवर्तित हो मुस्कानों में,
मेरे गीत खामोश खडे हैं हू हू करते श्मशानों में ।

रात उतरती जाती है।

पश्चिम में सांझल आँचल पर अलकें बिखराती-सी आती
मणिमय आंचल काला फिर धीरे-धीरे आ झलकाती।
उस विराट की तड़पन में जब नयन स्वतः मुंद जाते हैं,
नीरव नीरव पदचापों से सारे जग पर आ छा जाती।
फिर लहरा मंद ब्यारें वह शिशु को लोरी सुनवाती है।
रे रात सुहानी आती है !

किस की आशा में पक्षीगण कुछ गीत पगे-से गाते हैं
किसका रस नयनों में घोले किस ओर उड़े-से जाते हैं ?
किसकी यादें भर देती हैं, उत्साह न जाने, डैनों में।
किसके चंचल नयन इन्हें भी बार बार, भरमाते हैं।
लहराती संझावाती जगती को जब सुलवाती है,
तब रात उमगती आती है।

जब विहग-रमणियां कन्तों की बाहों में जा सो जाती हैं,
तरुओं की छायाएँ चुप कुछ कहती, कुछ समझाती हैं,
मेरा अन्तर जब अन्तर में हे राम ! समा न पाता है,
वे कौन उमंगें कलिओं के सहसा घूँघट उलटाती हैं ?
इक लहर उछलती आती, जब, इक लहर उछलती जाती है;
तब रात उतरती जाती है।

———

बादल गीत

बरसो रे,
बरसो रे,
पूर्व दिशा से उमड़े बदरा बरसो रे !

कारे-कारे, नीले-नीले,
प्रीतम से सजीले, शैल-छबीले,
उन-से निष्ठुर, उन से हठीले !

काले-काले !
नीले -पीले !
मेरी बाहों में झूम,
झुमड़ कर बरसो रे !

झर झर करते बदरा आओ !
विरहिन धरती को नहलाओ !
रोम-रोम सरसाओ,
दुखी हर्षाओ !

हरो तन-ताप,
शीतकर, परसो रे !

हस्ति-झुण्ड-से बढ़ते बढ़ते
मृग शावक-से क्रीड़ा करते
रमणी-से मापित पग धरते !
मेरी पलकों-से उठ गिरते !

उड़ते सित कपोत-झुण्ड– से,
रहो हृदय में पैठ,
नयन में घुमड़ो
बरसो रे !

———

फूल बोले, पात डोले !

जब पुजारी ने उषा के झुटपुटे में,
राम जपते वाटिका के द्वार खोले ,
पवन शीतल - सा हुआ ,
अनजान ही में , तरुवरों के पात डोले !
नयन में रस–सा बसातीं
रमणियाँ तज फूल बोले !
फूल बोले......पात डोले :

हे पुजारी देवता के, भोर होने दो सुनहली।
दो घड़ी कुछ और पीने दो मदिर सस्नेह प्याली।
दो पल प्रभाती पवन में हम चैन से दो सांस ले लें,
इक बार तो हम देखलें—कितने सलोने अंशुमाली !
मांग नहीं अनुचित हमारी मन में जो तू तनिक तोले।
पात डोले...........फूल बोले :

तेरी ऊषा नित्य क्यों अंतिम हमारी सांझ बनती ?
अर्चना की जोत तेरी प्राण में अवसाद भरती ?
हम भी अपने देवता को अन्त में ही अर्घ्य दे लें
चूम लें इक बार तो हम वल्लभाएं आर्त करती !
कमनीय कैसी दीखती हैं रसभरे ये होंठ खोले !
पात डोले.........फूल बोले !

लाज तज कातर स्वरों में कलियों ने कुछ यूं पुकारा ;
सृष्टि-कर्ता के पुजारी, हक नहीं क्या कुछ हमारा ?
कितने युगों से तोड़ता है, बींधता है हर सवेरे ,
तुष्ट कभी क्या हो सका भगवान या दानव तुम्हारा ?
मान्य नहीं पूजा उसे यह, हे पुजारी! मन में जोह ले !
पात डोले.........फूल बोले !

तेरी पूजा का कभी है अन्त, कुछ तो भान होगा ,
हंस कर हम जी सकेंगे, कुछ न कुछ अनुमान होगा !
आज या फिर प्रश्न यह निज देवता से पूछ लेना
कल खिलेंगे फूल जो, उनके लिए ऐहसान होगा !
हम से तू मुस्कान ले ले हम खड़े हैं होंठ खोले
पात डोले.........फूल बोले !

———

कौन-सा मैं गीत गाऊं ?

कौन-सा मैं गीत गाऊं ?
शाँत हो जिस से पिपासा,
प्राण में भर-भर के आशा,
सिंधु मिलने को चलें, क्या
गंगा कालिन्दी विपाशा ;
नयन से धारा बहाऊं ?

टूट जाएं जीर्ण बन्धन,
हो नया निर्माण नन्दन
ऐसा कोई यत्न होवे,
समाप्त हो सब करुण क्रंदन।
क्यों न ऐसी लय रचाऊं ?

उफ़न कर मम भाव-सागर,
इन्दु-मख का परस पा कर।
रत्न सब आएं धरा पर,
गा उठे धरती नहा कर।
फिर से नूतन जग बनाऊं !

टूट गए सब तार जिस के,
खो गए मिज़राब जिस के,
सब नया सामान हो तो,
सध सकेंगे राग इस पे।
वीणा यह क्यों कर उठाऊं ?

नर्तन करो अब बन्द बाले।
लुढ़कने दो मधु के प्याले।
होश में आओ री सोचें
तम में हों कैसे उजाले।
प्रात का सूरज दिखाऊं ?

या चलें उन बस्तिओं में,
काली, जली-सी हस्तियों में।
नींव के पत्थर छिपे हैं
खोज लें चल पस्तियों में।
आ तुझे मैं राह दिखाऊं ?

देख तो इन कोठियों में
गगन - चुंबी चोटियों में,
बिक रही मानव की सत्ता
मानवता ! दो रोटियों में।
बोल मैं कैसे बचाउं ?

गाऊं कैसे गीत इन के
संग चलते मीत जिन के।
प्रथम ही अन्तिम मिलन था,
अश्रु मैं पोंछूगा उन के।
उन को मैं कैसे भुलाऊं ?

गीत वह गाऊं कि जिस से
उडुगन आ कर गगन से
देवता तज स्वर्ग सारे,
भूमि पर नाचें मग़न से।
बादय मैं ऐसा बजाऊं ?

सुनोगी गीत अलबेले ?

ठहर दो क्षण अरी सरिता
मुझे भी संग तू ले ले !

प्रवाहित एक-से हम दो,
नहीं कुछ भेद तुझ-मुझ में !
तरंगें एक-सी उठतीं—
तेरे जल में, मेरे मन में।
तेरी भाँति ही मैंने भी-
अनेकों कष्ट हैं झेले।

तेरे यौवन की भाँति ही
यहाँ तिरती आशायें हैं।
उत्साहों का गुंजन है,
छुपी मन में व्यथायें हैं।
अनेकों घाटियाँ पाटीं,
अनेकों मेरु-गिरि ठेले।

मेरे जीवन की नदिया में
कहीं हैं बुलबुले उठते,
छिटकती भोर की किरणें
कहीं पर भँवर से - बनते !
अनेकों ठोकरें खाकर
अनेकों पंथ है बदले !

तरंगों पर तरंगें हैं,
हिलोरों पर हिलोरें हैं,
कहीं कलकल की लय भी है,
कहीं झंझे झकोरे हैं।
मैंने भी तो गाए हैं
सुनोगी गीत अलबेले ?



तब तक मंज़िल नहीं पाएंगे

कुछ दूर
जहां बादल बहुत काले हो गए हैं,
जहां देखते
आँखें खुली की खुली रह जाती हैं !
होंठों से आह भी निकल नहीं पाती,
झंझाओं के झकोरे
जहां चरम सीमा पा लेते हैं
प्राण अकुला कर
जड़ होना चाहते हैं !
वहीं
काले बादलों में
या शायद, उन से कुछ और आगे
हमें चलना है प्रिये।
जब तक
इस गहन तमावृत मेघखण्ड तक

हम नहीं पहुंच पाते,
जब तक उसकी परिधि को
हम माप नहीं लेते,
तब तक
हे सह-बटोही ,
मंजिल नहीं पाएंगे !

———

मैं जग ठुकरा कर चल दूंगा!

सुख-स्वप्नों के मृदु-जालों में खोया-खोया,
निज को भूला,
मैं जग ठुकरा कर चल दूंगा!

शमशानों से मुर्दे उठ-उठ
क्यों मुझ पुकारा करते हैं?
मेरे मौन को निरख निरख
बरबस दुत्कारा करते हैं!
जाने वे कैसे समर हेतु
मुझको ललकारा करते हैं?
क्या अमृत-दान मुझे देने
वे व्याल फुंकारा करते हैं!
मैं मानव आज विधाता को
अभिशापों का इक वर दूंगा!

शिव को मैं आज अशिव कह-कह
इक ताण्डव नया सजा दूंगा
मैं मानव प्रलय-तरंगों में
भीषण अट्टहास गुंझा दूंगा !
शैशव सुन्दर, मादक यौवन
सब यादें मधुर भुला दूंगा,
मन की सुनसान समाधी में
मन के उच्छ्वास सुला दूंगा !
मैं आज तृषातुर अधरों को
निज नयनों का ही जल दूंगा।

मैं आज अभाव की दुनियां में
वीणा लेकर कुछ गाऊंगा,
फिर तोड़ उसी की तारों को
निर्लज्ज बना मुसकाउंगा।
यौवन, विलास के प्रांगण में
मरघट की चिता जलाऊंगा।
अरमानों की आहुति दे दे
विकराल बना हर्षाउंगा !
निज निबल करों से सुख-दुख की।
सब चाह-अचाह मसल दूंगा !

———

हमारी धरती !

हम ऐसी धरती चाहते हैं,
हम ऐसा अंबर चाहते हैं:

जिस में नित अंकुर फूट चलें
पल्लव पाएं नभ को छू लें !
उन तरुओं की शाखाओं से
भोले मुखड़े भूले भूलें,
उन भूलों पर उठते-गिरते
हम मीठे गीत सुनाते हैं।
हम ऐसी धरती चाहते हैं,
हम ऐसा अंबर चाहते हैं।

श्यामल-श्यामल, कोमल - कोमल
जिस पर छाई हो हरयाली;
कल-कल करती धाराओं में;
बिखरी हो जीवन की लाली;
इस धरती को भर बाहों में
अहिवात सजाना चाहते हैं!
हम ऐसी धरती चाहते हैं।

सुरभित-सा पवन मचलता हो
तूफ़ानों को दहलाता - सा
कलियों के मोहक मुखड़ों से
अवगुंठन - सा उलटाता - सा,
इन काली - काली रातों में
हम पूनो लाना चाहते हैं!
हम ऐसा अंबर चाहते हैं।

तरु-वृन्दों की जिन बांहों में
वल्लरियां झूमा करती हैं,
उनके कोमल-से पत्तों पर
जो जल की बून्दें झरती हैं;
वह ओस संजो कर रे साथी,
हम सागर को शरमाते हैं!
हम ऐसी धरती चाहते हैं।

जहाँ बच्चों की मुस्कानों को
पैरों से मसला न जाए,
जहां यौवन के अरमानों को
टैंकों से कुचला न जाए,
जहाँ जीवन का अनुभव लेकर
बूढ़े चेहरे मुस्काते हैं,
हम ऐसी धरती चाहते हैं

सुन्दर-सी इन मांगों का
सिन्दूर नहीं कोई लूटे,
आशा की कड़ियाँ न टूटें,
हाथों के कंगन न फूटें।
धरती के दीपों में हम तो
नभ के तारे झुठलाते हैं,
हम ऐसी धरती चाहते हैं!

मां की गोदी में बच्चे जब
भयहीन मचल मुस्काते हैं,
अनजानी-सी जिस ममता से
सुख पाते हैं इठलाते हैं,
मां की उन भावुक बाँहों को
जगती पे छाना चाहते हैं,
हम ऐसी धरती चाहते हैं
हम ऐसा अंबर चाहते हैं!

———

फ़रवरी का एक दिन।

प्रिये बेचैन न होना !

ऋतु बदली, खुला मौसम ,
पेड़ों ने हटाये हैं पुराने पात।
नई अभिलाष लेती जन्म ,
अंगड़ाता नया यौवन।

ये चिड़ियां भी बनाती घोंसले
तिनके व धागे—

कितना बड़ा सामान
लाती हैं ,
जुटाती छोटे-बड़े उपकरण ,
निरन्तर गीत गाती
वे सुनाती हैं मुझे।

उदय होता सलोना स्वप्न ,
नयन में मेरे गिलहरी दौड़ जाती
कूदती, करती निरन्तर :
कुट-कुट ,
किटा-किट- किट !

नई यह धूप,
नूतन छांव ;
परछाइयों के पैर
लम्बे, और लम्बे...
अंबर के झुके-से नैन
नदियां मोड़ खाती ,
इतिहास के ये पृष्ठ...
हैं खामोश, कुछ ठहरे हुए ...

कसमसाती धूल के धानी बदन से
गंध सोंधी !
मूलरों पर कांव करते काग

कूकती कोयल कहीं अमराइयों में।

मेरे लिये लेकिन,
मेरे लिए साथी ! नहीं ये साज़
लेकर हृदय में प्यार
दबाए प्राण की अभिलाष !
करना मुझे संघर्ष

पर......
मन में करो विश्वास
(मेरी निराशा देख कर बेचैन न होना)
कि मेरा प्यार बस
तेरे लिए है।

———

गधे की आत्मकथा !

अट्टालिका एक बन रही थी अति सुन्दर !
मैंने सोचा स्वर्ग नाम की चीज़ कहां है?
यह धरती जिसने मनुष्य को जन्म दिया है,
यहीं सभी सुख के साधन हैं, स्वर्ग यहां है।

कुछ दूरी पर सुस्ताता-सा एक गधा था
आते-जाते पूंछ हिलाता, धूल उड़ाता
उस को क्या मालूम भवन था कितना सुन्दर !
वैरागी-सा खड़ा अधम वह निरा गधा था !

मैंने पूछा गधे अरे, इतनी सुन्दरता
देखी तूने कभी, या सचमुच निरा गधा है ?
यह बितान, सुन्दर कटाव, यह पच्चीकारी
कहीं और धरती पर तू क्या देख सका है ?

आश्चर्य चकित हो गया देख मैं सच मानो गे,
मोटे नयनों से उस ने इक दम मुझ को हेरा।
संगीत भरी वाणी में फिर वह बोला ऐसे :
उत्तर दूँगा लगा आने दो मुझ को फेरा !

कितनें भवनों की नींवें खुदती देखी हैं !
मेरे श्रम-जल से पक्की होती दीवारें !
जाने, ईंटें पत्थर, रोड़े क्या कुछ लाया !
छिली पीठ, खूँ बहा, मगर खाता हूं मारें !

भवन बना तो मैंने ही फिर मल को ढोया,
इन्द्र-भवन से चमक उठे घर कितने सुन्दर !
मैंने नींवों को देखा जो धरा तले थीं
अंबर छूता भवन भई सचमुच था मनहर !

अगले दिन से नए भवन की तैय्यारी में
कर दी शुरू सफ़ाई गंदी-सी धरती की।
जिस धरती ने शायद केवल मनुज जना है,
मैंने ही इज्ज़त रखी है इस धरती की।

कवियों से शायद कहलाने पुण्य - प्रसू माँ
धरती ने मानव को ही बस पुत्र बनाया
लेकिन जब मानव ने उसकी लज्जा लूटी
फटे वसन को पुनः जोड़ने मुझे बुलाया।

हर रात मुझे जब उसी कोठरी में सोना है,
मैं रखूं क्यों चाह व्यर्थ उस स्वर्ग पुरी की ?
देखो दाईं ओर जो मज़दूरन आती है,
आँख उसी पर गड़ी रे कलसे उस बाबू की

मेरे मालिक से मज़दूरन ने कही कहानी
कहीं और मज़दूरी की पर आस नहीं है
वह भी न होगी बेटी शायद इस धरती की।
पर है मानव की जायी वह गधी नहीं है।

हर रात मेरा मालिक जो पी कर घर आता है,
खूब पीटता घरवाली को पागल-सा हो,
हो मौन सोचता रहता हूं मैं कितनी बातें,
समझ नहीं पाए तो तुम भी निरे गधे हो

गधा उड़ाता धूल खुरों से चला गया पर,
मैंने एक नज़र डाली रमणीय भवन पर।
फिर देखा बाबू की नज़रें लगी हुई थीं
मज़दूरन को फटी हुई चोली के ऊपर।

———

पूर्णात् पूर्णमुदच्यते !

सागर मुझ में डूबा करता।
मेरे नयनों के आंचल में,
आंचल के गहर पानी में,
पानी में भीगी अभिलाषा,
अभिलाषा सिक्त जवानी में,
यह डूब डूब ऊबा करता।

मेरी बाहों की सीमा में
सीमा की विस्तृत तड़पन में
तड़पन को राह दिखाता-सा
इक सीमा हीन प्रभंजन में
तिनका-सा एक चुभा करता
सागर मुझ में डूबा करता।

समायोजन !

आसमान पर
सतरंगा धनुष
तुम्हारी लम्बी सुन्दर सुडौल
बाहों जैसा !

उभरता
साफ नीला तुम्हारा वक्ष
जिस पर से जानबूझ कर
तुमने आँचल सरका दिया है !
× × ×
× × ×
मेरे पीछे
गन्दे पनाले से गिरते
कचीले पानी की टिप टिप
और बुदबू
जो रोज़ फैली होती है डयौढ़ी में

अटूट
जिससे है भरा इतिहास !

इक बार फिर
उबला बहादुर ख़ून
सत्य की जयकार करता बह चला,
धर्म उठो
सारी अनय की आग !
बुझने लगी !

उखड़े अयूबी मूंछ के कुछ बाल
भारती जब चल पड़े ।

इक बार फिर
वीरता का इक नया उपमान
ख़ून के इतिहास का इक पृष्ठ
पढ़ जिसे सदियों तलक
इतिहास मानेगा पुरानी बात :
शान्ति के ये भक्त

उगलने लगते प्रलय की आग
जब कभी ललकारता
निर्लज्ज !

संभल जा
सब्र का है हो गया
लब्रेज़ अब पैमान !
इक बार फिर !

इक बार फिर !
कवि-लेखनी लिखती लहू के अंक।
हृदय में नीर ,

नयन में गर्व की मुस्कान !
अधर पर क्रुद्ध जय-जयकार
वीरों का—
रहेगा गूंजता नभ में
प्रलय तक और उस के बाद.........

शून्य में भरता सुहाना शब्द :

अजेय वीरों की धरा,
है धन्य इसकी कोख
जिससे जन्मते ये वीर
इक बार फिर.........

———

गाता जाऊंगा !

विमुख हे जब तक प्राण रहो गे, गाता जाऊंगा ।
जग सुने, सुने न गीत मुझे कोई परवाह नहीं
नभ नक्षत्रों को ले आवे रंचक-सी चाह नहीं
मदिरा के प्याले झूम उठें, लुड़कें चाहे फूटें,
अपमानित हों गीत मगर निकलेगी आह नहीं ।
मैं अपने मन की दो बातें बस तुम्हें सुनाउंगा

अपने इन मधुमय कलषों को ले जाओ मधुबाले
मानव को लुड़काने वाले तुम तोड़ भी दो प्याले !
पथभ्रष्ट मुझे कर पाएंगे तव नयनों के डोरे ?
अरमान अनेकों मैंने तो होली में जला डाले !
मैं तेरे डगमग पैरों को स्थिर पथ पर लाउंगा ।

बांध लो अपनी अलकें मुझ को इन से प्यार नहीं
तेरी थिरकती पलकों से मुझ को व्यापार नहीं
तेरे इन यौन उभारों से मुझको क्या लेना है
है दूर कहीं मंज़िल मेरी चाहिए अभिसार नहीं !
मैं तो तेरी कटुशाला में ला साम सुनाउंगा !

संभालो सब खेल मुझे यह तान नहीं चाहिए
दर्द भरे इन गीतों को तव दान नहीं चाहिए
इन गीतों में तो जीवन की धाराएं बहती हैं
इन स्वतः प्रवाहित लहरों को आह्वान नहीं चाहिए
सागर की विषम तरंगों पै निज साज़ सजाउंगा
जग सुने, सुने न गीत मगर मैं गाता जाउंगा ।

सागर की लोल लहर लहरो,
कुछ और उठो,
कुछ और उठो;
तूफ़ान बनो!

—ओमप्रकाश गुप्त।